जे. कृष्णमूर्ति

जे. कृष्णमूर्ति का जन्म 11 मई 1895 को आन्ध्र प्रदेश के एक छोटे से कस्बे मदनापल्ली में एक धर्मपरायण परिवार में हुआ था। किशोर अवस्था में उन्हें थियोसॉफिकल सोसाइटी की अध्यक्ष डॉ. एनी बेसेंट ने गोद ले लिया। श्रीमती बेसेंट और थियोसॉफी के अन्य अनुयायियों ने कृष्णमूर्ति को आगामी विश्व शिक्षक के रूप में घोषित किया। मानवता के उद्धार के लिए समय-समय पर 'विश्व शिक्षक' मनुष्य के रूप में अवतरित होता है, ऐसा विभिन्न धर्मग्रंथों में वर्णित है। थियोसॉफी के अनुयायी इसकी भविष्यवाणी पहले ही कर चुके थे, और अब 'उसके' आगमन की तैयारी के लिए 'ऑर्डर ऑफ द स्टार इन द ईस्ट' नाम से एक विशाल संगठन 1911 में खड़ा किया गया। युवा कृष्णमूर्ति को इसका प्रमुख बनाया गया।

सन् 1922 में कृष्णमूर्ति किन्हीं गहरी आध्यात्मिक अनुभूतियों से गुज़रे जो उनकी जीवनदृष्टि में क्रान्तिकारी परिवर्तन ले आयीं। सन् 1929 में उन्होंने इस ऐतिहासिक उद्घोषणा के साथ 'ऑर्डर' को भंग कर दिया : *''सत्य एक पथहीन भूमि है; वहां तक आप किसी भी मार्ग, किसी भी धर्म या किसी भी सम्प्रदाय के द्वारा नहीं पहुंच सकते... सत्य असीमित और अप्रतिबन्धित है... उसे संगठित नहीं किया जा सकता। मेरा सरोकार मनुष्य को परम एवं निर्विकल्प रूप से मुक्त करने से है।''*

उन्होंने 'ऑर्डर' को दी गयीं समस्त धन एवं भू सम्पदाएं लोगों को लौटा दीं। इसके बाद अगले पचास से भी अधिक सालों तक, जब तक कि ओहाय (अमेरिका) में 17 फरवरी 1986 को उनकी मृत्यु नहीं हो गयी, वे अनथक रूप से पूरी दुनिया का दौरा करते रहे - सार्वजनिक वार्ताएं करते हुए, जीवन के गहन प्रश्नों पर परस्पर संवाद एवं वार्तालाप करते हुए, वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों, बुद्धिजीवियों, विचारकों एवं सत्य के खोजियों के साथ परिचर्चाएं करते हुए। सत्य के प्रेमी एवं मित्र के रूप में उन्होंने यह भूमिका निभाई; गुरु या प्रामाण्य के तौर पर उन्होंने स्वयं को कभी नहीं रखा। इस संदर्भ में एक जिज्ञासु के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा- '*आपके जीवन के लिए मैं बस एक दर्पण का कार्य कर रहा हूं, उसमें आप जैसे*

भी हैं स्वयं को हू-ब-हू देख सकते हैं और तब आप दर्पण को फेंक सकते हैं। दर्पण महत्त्वपूर्ण नहीं है।'

जे. कृष्णमूर्ति ने अपना सारा जीवन मनुष्य को उसके प्रतिबन्धन एवं स्वातंत्र्य की सम्भावना के प्रति सचेत करने के लिए समर्पित किया। उन्होंने बड़ी बारीकी से मानव मन की गुत्थियों की ओर संकेत किया और उनके प्रति चुनावरहित एवं निष्पक्ष भाव से सजग होने के लिए कहा। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि हमारा दैनिक जीवन सच्चे अर्थों में सजगता, ध्यान एवं सृजन की ऊर्जा से आलोकित होना चाहिए। एक ऐसे आमूलचूल एवं बुनियादी परिवर्तन की आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया जो एक नितांत नये मानस और नयी संस्कृति को जन्म दे सके। उन्होंने कहा, *''आमूल परिवर्तन भविष्य में नहीं होता, वह कभी भी भविष्य में नहीं हो सकता। वह केवल अभी, क्षण-प्रतिक्षण, हो सकता है।... मिथ्या को मिथ्या के रूप में देखना और सत्य को सत्य के रूप में देखना ही आमूल परिवर्तन है, क्योंकि जब आप किसी बात को बड़ी स्पष्टता से सत्य के रूप में देख लेते हैं, वही सत्य आप को मुक्त कर देता है...'* ('प्रथम और अंतिम मुक्ति')

कृष्णमूर्ति को विश्व के महान द्रष्टाओं एवं शिक्षकों में से एक माना जाता है। उन्होंने स्वयं को कभी किसी खास धर्म, संप्रदाय, विचारधारा या राष्ट्रीय सीमा से बंधा हुआ नहीं माना। उनकी दृष्टि में किसी भी प्रकार का विभाजन या विशेषीकरण मानव-मानव के बीच अलगाव लाता है और आखिरकार संघर्ष एवं युद्ध का कारण बनता है। ओहाय (कैलीफोर्निया), सानेन (स्विट्ज़रलैंड), ब्रॉकवुड पार्क (इंग्लैंड) और भारत के विभिन्न स्थानों में होने वाली उनकी सालाना वार्ताओं में हजारों की संख्या में अलग-अलग देशों, व्यवसायों और दृष्टियों से जुड़े लोगों का आना होता और वह सदा इस बात पर ज़ोर देते कि मनोवैज्ञानिक स्तर पर जिस तरह द्रष्टा दृश्य से भिन्न नहीं है मनुष्य जगत से अलग नहीं है; बल्कि हम ही संसार हैं तथा अपने हर क्रियाकलाप के लिए स्वयं उत्तरदायी हैं। बाहर प्रकट हो रही सामूहिक अव्यवस्था एवं हिंसा हमारे भीतर की अव्यवस्था का ही नतीजा है जिसके लिए हममें से हर कोई ज़िम्मेदार है। सारी समस्याओं के मूल तक पहुंचने और अपने मन-मस्तिष्क की गतिविधियों का बारीकी से अवलोकन करने का उनका उत्कटता से आग्रह होता। जीवन को उसकी सम्पूर्णता में देखने के लिए वे बारम्बार श्रोताओं से कहते।

मनुष्य के समग्र प्रस्फुटन और सम्यक शिक्षा से कृष्णमूर्ति को गहरा सरोकार था। इसके लिए उन्होंने विश्व के कई भागों में शिक्षा केंद्रों की स्थापना की जहां बच्चों एवं शिक्षकों को भय एवं प्रतिस्पर्धा से मुक्त वातावरण में समग्रता से खिलने, विकसित होने का अवसर मिल सके। भारत में उनकी प्रेरणा से कई शिक्षा केंद्र स्थापित हुए : ऋषिवैली (आंध्रप्रदेश), राजघाट शिक्षा केंद्र (वाराणसी), द वैली स्कूल (बंगलौर), द स्कूल (चेन्नई), नचिकेत (उत्तरकाशी), बाल आनंद (मुंबई) एवं सह्याद्री (पुणे)। इसके अलावा ओहाय, अमेरिका में ओक ग्रोव स्कूल तथा इंग्लैंड में ब्रॉकवुड पार्क की स्थापना हुई। प्राकृतिक सौंदर्य से संपन्न शांत वातावरण में स्थित ये सभी शिक्षण केंद्र विद्यार्थियों को भय, तुलना एवं स्पर्धा से मुक्त परिवेश उपलब्ध कराने की भरपूर कोशिश कर रहे हैं।

कृष्णमूर्ति के विशाल साहित्य में उनकी सार्वजनिक वार्ताएं, प्रश्नोत्तर, परिचर्चाएं, संवाद, साक्षात्कार, एवं उनका निजी लेखन शामिल है। ऐसा माना जाता है कि उनका समग्र साहित्य प्रकाशित होने पर औसत आकार की करीब चार सौ किताबों का स्थान लेगा जिसमें से अभी तक लगभग पचास प्रमुख पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है तथा विश्व की सभी मुख्य भाषाओं में उनका अनुवाद भी किया जा रहा है। इसके अलावा बिलकुल प्रामाणिक और मूल रूप में उनकी शिक्षा ऑडियो एवं वीडियो माध्यमों में भी उपलब्ध है।

भारत और विश्व के कई स्थानों पर कृष्णमूर्ति फाउंडेशन द्वारा अध्ययन केंद्रों ('स्टडी सेंटर') की स्थापना की गयी है जहां के एकांत एवं प्रकृति से भरपूर वातावरण में रहकर कोई भी उनकी शिक्षाओं का गहन अध्ययन एवं स्व-अन्वेषण कर सकता है।

''हर पत्ती में उसका अस्तित्व है जो शाश्वत है''

प्रश्नः आपकी उपस्थिति का प्रत्यक्ष असर क्या आपकी शिक्षाओं को समझने में सहायक नहीं? क्या शिक्षाओं को हम तब बेहतर ढंग से नहीं समझते जब हममें गुरु के प्रति आदर-प्रेम होता है?

कृष्णमूर्तिः नहीं, सर। जब आप लोगों से प्रेम करते हैं, अपने पड़ोसी से प्रेम करते हैं, तब समझ ज्यादा व्यापक होती है। जब आपमें अपनी बीवी, अपने बच्चे, अपने पड़ोसी के लिए, चाहे वह गोरा हो या काला हो, प्रेम होता है, जब आपके हृदय में सुरभि होती है, गीत होता है, तब उसी से समझ का जन्म होता है।

जब आप मुझे सुनते हैं, तो शायद प्रत्यक्ष रूप से सहायता होती है, क्योंकि जो कहा जा रहा है, उसे समझने के लिए आप अपना दिलो-दिमाग लगाते हैं। यदि आप इसका पता लगाना नहीं चाहते तो आप यहां आते ही नहीं। एक ऐसे व्यक्ति से बात करके, जो ज़्यादा स्पष्ट रूप से समझता है, आपका अपना मन और हृदय भी स्पष्ट हो जाता है। लेकिन यदि आप उस व्यक्ति को अपना गुरु, अपना शिक्षक बना लेते हैं और सिर्फ उसे ही अपना प्रेम और सम्मान देते हैं तो दूसरों के प्रति आपमें सम्मान का अभाव पैदा जो जाता है। आपने ग़ौर किया सर, कि आप मेरे प्रति कितना सम्मान जता रहे हैं और अपने पड़ोसियों, अपनी पत्नी और अपने नौकरों (यदि कोई है आपके पास) आदि के प्रति आप कितने विचारहीन और उदासीन रहते हैं। इस तरह का विरोधाभास यह संकेत देता है कि हर व्यक्ति के प्रति आपके मन में असम्मान की भावना है। यह कोई बड़े महत्त्व की बात नहीं कि आप इस वक्ता के साथ कैसा व्यवहार करते हैं लेकिन आप अपने पड़ोसी, अपनी पत्नी और नौकर के साथ कैसा व्यवहार करते हैं, यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। मुझे सम्मान देना, एवं दूसरों को न देना - यह तो पाखंड है, जो प्रेम को नष्ट कर देता है।

प्रेम ही समझ लाता है। जब आपका हृदय भरा हुआ होता है, तब आप शिक्षक को, भिखारी को, बच्चों की हंसी को, इंद्रधनुष को और मानव

की वेदना को सुनेंगे। हर पत्ती में, मृत पत्ती में भी उसका अस्तित्व है जो शाश्वत है। लेकिन हमें इसे देखना नहीं आता क्योंकि हमारे दिलो-दिमाग में इस खोज के अलावा बाकी तमाम बातों से भरे हुए हैं।

इसलिए एक के प्रति आदर की कोई सार्थकता नहीं है यदि आपमें हरएक के लिए आदर न हो - आदर यानी स्नेह, दयालुता, ख़याल रखने का जज़्बा। और जब प्रेम होता है, परवाह होती है, उदारता होती है, किसी तरह का वैमनस्य पोषित नहीं किया जा रहा होता, तब आप सत्य के एकदम करीब होते हैं। प्रेम आपको संवेदनशील बनाता है, आपके भीतर की दीवारों को हटाता है। जो संवेदनशील है वही फिर से नवीन होने में सक्षम है। तभी सत्य का आगमन होता है। यदि आपके मन, हृदय पर बोझ हो तब वह नहीं आ सकता। अनुसरण और क्रूरता का बोझ हो तो सत्य प्रकट नहीं हो पाता।

तो मुझे सुनने के दौरान अगर आप बौद्धिक रूप से उद्दीपित-प्रोत्साहित हो रहे हैं, तो इसके कुछ मायने नहीं हैं क्योंकि सारे उद्दीपन होते इंद्रियगत ही हैं। इसके मायने तभी हैं जब यह आपके रोज़मर्रा के कर्म से जुड़ पाए, जब यह लोगों से, विचारों से तथा वस्तुओं से आपके संबंध पर रोशनी डाले। फर्क इस बात से पड़ने वाला है कि आप अपने नौकर के साथ, अपनी बीवी के साथ, अपने पति के साथ, अपने पड़ोसी के साथ कैसे पेश आते हैं; क्योंकि जब विचारशीलता होती है, एक जाग्रत, प्रज्ञापूर्ण जांच-पड़ताल होती है, तो समर्पण का उदय होता है। सत्य के लिए, अज्ञात के लिए बिलकुल खुली हुई ग्रहणशीलता है समर्पण। जहां प्रेम है, वहीं समझ है।

10 वीं सार्वजनिक वार्ता, बंबई 14 मार्च 1948
परिसंवाद जन्मशती विशेषांक, जून 1995 से उद्धृत